
प्रवचन नं. २६६, गाथा- १९०-१९२, श्लोक-१२९-१३०
शुक्रवार, अषाढ शुक्ल ५

दिनाङ्क २९-०६-१९७९,

(समयसार, संवर अधिकार की) अन्तिम गाथा का भावार्थ। जीव के जब तक आत्मा और कर्म के एकत्व का आशय है.. आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध की कर्म के साथ एकत्वबुद्धि है, राग के साथ (एकत्वबुद्धि है) राग का विकल्प उठे, चाहे तो पुण्य का हो, या पाप का (हो) परन्तु राग के साथ आत्मा को एकत्वबुद्धि है, तब तक मिथ्यात्व है। है ? देखो !

भेदविज्ञान नहीं है.. अस्ति-नास्ति की है। जब तक, भगवान आत्मा पवित्रता का पिण्ड है, उसे अपवित्रता रागादि की एकत्वबुद्धि है अर्थात् भेदज्ञान नहीं है, उससे भिन्न है। भिन्न है ऐसा भिन्न का भान नहीं है, तब तक मिथ्यात्व,.. लो, बहुत संक्षिप्त बात है।

स्वद्रव्य में परद्रव्य का कोई भी अंश, राग अंश हो, पुण्य अंश या शरीर या कर्म, कोई भी परद्रव्य का एक अंश आत्मा के साथ एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि द्रव्य से दोनों अत्यन्त भिन्न हैं और अन्दर विकार होता है, वह भी तत्त्व-ज्ञायकतत्त्व से भिन्न तत्त्व है। पुण्य-पाप का भाव, ज्ञायकभाव से भिन्न तत्त्व है। भिन्न को एकपने की मान्यता... आहाहा! यह मिथ्यात्व है। आहाहा!

तब तक मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति.. तीन दोष लिये। और योगस्वरूप.. योग की एकता। तब तक उसे योग की एकताबुद्धि है। आहाहा! उसका जो अध्यवसाय-एकत्वबुद्धि उसे वर्तते हैं,.. राग के साथ, अविरत के साथ, कषाय के साथ और योग के साथ एकत्वबुद्धि वर्तती है, तब तक वह मिथ्यादृष्टि है, तब तक उसे जैनदर्शन की खबर नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन है।

मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति.. तीन दोष कहे और योग.. (अर्थात्) कम्पन, वह भी है, उसके साथ एकत्वबुद्धि है। सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होने पर, मिथ्यात्व का एकत्वपने का नाश, अविरति का भी उतने अंश में नाश, योग का भी उतने अंश में नाश हो जाता है। एकत्वबुद्धि का जो भाव है, उतना नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया ?

इन अध्यवसान से रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव होता है,.. लो! इन अध्यवसान-एकत्वबुद्धि से चाहे तो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग (होवे), दो की एकत्वबुद्धि से। आत्मा और यह विकार दोनों भिन्न हैं, तथापि दोनों में एकत्वबुद्धि से अध्यवसाय जो एकत्वबुद्धि होती है, उस अध्यवसान से राग-द्वेष-मोहरूप आस्रवभाव होते हैं। उसके कारण राग-द्वेष और मिथ्यात्व का भाव होता है। आहाहा!

आस्रवभाव से कर्म बँधता है,.. आहाहा! यह तो इसका क्रम कहते हैं। राग - द्वेष-मोह से आस्रव होता है, नये आवरण आते हैं और इससे कर्म बँधते हैं। आहाहा! कर्म से शरीरादि नोकर्म उत्पन्न होता है.. इस कर्म के कारण यह शरीर, वाणी उत्पन्न होते हैं। यहाँ तो दो भाग करने हैं न! शरीर की अवस्था शरीर से है परन्तु फिर भी उस अवस्था को, जब तक योग की क्रिया को अथवा राग को अपना मानता है, तब तक वह अध्यवसान बन्ध का कारण है। वह कर्म बन्ध का कारण है। वह कर्म है (वह) नोकर्म-शरीर का

कारण है। है ? और नोकर्म से संसार है। शरीर, वह संसार है, क्योंकि उस पर लक्ष्य जाएगा तो उसके पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर (उपयोग जाए, वह) शुभ और अशुभ है। वह संसार है। आहाहा!

परन्तु जब.. अब सुलटी बात है। उसे आत्मा और कर्म का भेदविज्ञान होता है.. मूल चीज़ यह। भेदविज्ञान करना, यह मूल चीज़ है। प्रथम में प्रथम। क्योंकि मूल से अनादि से रागादि से एकत्वबुद्धि है। चाहे तो दया, दान, व्रत के परिणाम हों, वह राग है, विकल्प है। उससे एकत्वबुद्धि अनादि से चली आती है। आहाहा! इसलिए उसे भेदविज्ञान नहीं है। जब उसे आत्मा और कर्म का भेदविज्ञान होता है.. शुद्ध चैतन्य ज्ञान का अनुभव होने पर यह भेदज्ञान हुआ। राग का अनुभव जो था, वह छूटकर आत्मा का अनुभव हुआ, वह भेदज्ञान हुआ। आहाहा! आंशिक भी आत्मा के शान्ति और आनन्द का वेदन आया, वह राग से भेदज्ञान से आया। आहाहा!

तब शुद्धात्मा की.. प्राप्ति होती है। आत्मा और कर्म का भेदज्ञान होता है, (तब शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है)। यह संवर होने का क्रम, धर्म होने का क्रम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले यह कुछ दया, व्रत, तप और भक्ति करें तो फिर कुछ धर्म होगा, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। विकार और स्वभाव की एकताबुद्धि है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और मिथ्यात्व के कारण दूसरे साथ में अनेक प्रकार के अध्यवसाय की एकताबुद्धि है, परन्तु जब भेदज्ञान होता है, तब शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति। राग और पुण्यादि के परिणाम की प्राप्ति थी, तब तक मिथ्यात्व था। आहाहा! क्योंकि वहाँ इसकी दृष्टि थी। पुण्य और पाप के विकल्पों की प्राप्ति थी, वहाँ तक इसकी दृष्टि वहाँ थी। उनकी दृष्टि छूटकर भेदज्ञान होने पर आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति हुई, उसे यहाँ भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! ऐसा धर्म है। धर्म की शैली बहुत सूक्ष्म है।

शुद्ध आत्मा की प्राप्ति होती है (और) मिथ्यात्वादि अध्यवसानों का अभाव होता है,.. अर्थात् पर के साथ एकत्वबुद्धि का अभाव होता है। चाहे तो योग हो, तो भी एकत्वबुद्धि का तो अभाव है। आहाहा! कषाय होवे तो उससे एकत्वबुद्धि का अभाव है; योग होवे, कम्पन है, परन्तु उससे एकत्वबुद्धि का अभाव है। आहाहा! अयोगी तो चौदहवें गुणस्थान में होता है। यहाँ जब भेदज्ञान हुआ है, तब तो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग,

सबसे भिन्न पड़ा है; इसलिए योग के कम्पन से भी एकत्व छूट गया है। योग और कषाय रहे, परन्तु उनसे एकत्वबुद्धि छूट गयी है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अध्यवसानों का अभाव होता है, और उससे रागद्वेषमोहरूप आस्रव का अभाव होता है,.. मिथ्यात्वादि पर के साथ एकत्वबुद्धि का अध्यवसाय गया, तब उसके आस्रव का अभाव होता है। राग-द्वेष-मोह के आस्रव का (अभाव होता है।) आस्रव के अभाव से कर्म नहीं बँधता,.. और भावास्रव नहीं होता इसलिए उसे नया कर्म नहीं बँधता और कर्म के अभाव से शरीरादि नोकर्म उत्पन्न नहीं होते.. कर्म के अभाव से शरीरादि की प्राप्ति नहीं होती और नोकर्म के अभाव से संसार का अभाव होता है। शरीर का अभाव होने पर मुक्ति होती है। आहाहा! इस प्रकार संवर का क्रम जानना चाहिए। धर्म की प्राप्ति से ठेठ वृद्धि (हो), उसका इस प्रकार क्रम जानना चाहिए। आहाहा! पहले कोई भगवान की भक्ति, पूजा, व्रत और तप करे और फिर संवर हो, ऐसा नहीं है। वह तो आस्रव है। छोटे में छोटा योग का कम्पन, उसके साथ एकत्वबुद्धि है, तब तक मिथ्यात्व अध्यवसाय है। आहाहा! अर्थात् जब तक पर्याय के ऊपर बुद्धि है, तब तक उसे राग और योग की एकताबुद्धि है और वह दृष्टि बदलकर द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि की, तब उसे योग के कम्पन की और कषाय की एकता की बुद्धि का नाश होता है। आहाहा! ऐसा काम है। इस प्रकार संवर का क्रम जानना चाहिए। लो!

कलश-१२९

संवर होने के क्रम में संवर का पहला ही कारण भेदविज्ञान कहा है, अब उसकी भावना के उपदेश का काव्य कहते हैं:-

(उपजाति)

सम्पद्यते सम्वर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात् ।

स भेदविज्ञानत एव तस्मात् तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥१२९॥

श्लोकार्थ : [एषः साक्षात् संवरः] यह साक्षात् संवर [किल] वास्तव में [शुद्ध-

आत्म-तत्त्वस्य उपलम्भात्] शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि से [सम्पद्यते] होता है; और [सः] वह शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि [भेदविज्ञानतः एव] भेदविज्ञान से ही होती है। [तस्मात्] इसलिए [तत् भेदविज्ञानम्] वह भेदविज्ञान [अतीव] अत्यन्त [भाव्यम्] भाने योग्य है।

भावार्थ : जब जीव को भेदविज्ञान होता है अर्थात् जब जीव आत्मा और कर्म को यथार्थतया भिन्न जानता है, तब वह शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है, शुद्ध आत्मा के अनुभव से आस्रवभाव रुकता है, और अनुक्रम से सर्व प्रकार से संवर होता है, इसलिए भेदविज्ञान को अत्यन्त भाने का उपदेश किया है।।१२९।।

श्लोक - १२९ पर प्रवचन

संवर होने के क्रम में संवर का पहला ही कारण.. लो! पहला कौन सा कारण? धर्म होने में पहला कारण क्या? धर्म कहो या संवर कहो। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की प्राप्ति कहो या संवर कहो या धर्म कहो? वह संवर का पहला ही कारण भेदविज्ञान कहा है,.. है? पहला कारण यह करना और फिर यह करना—ऐसा नहीं। पहले राग—दया पालना, भक्ति करना, देव-गुरु का विनय करना, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! पहले ही भेदविज्ञान कारण है। आहाहा! संवर होने के क्रम में संवर का पहला ही कारण भेदविज्ञान कहा है,.. बहुत सरस बात है।

मुमुक्षु : आत्मा का ध्यान करना, यह पहला कारण नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला आत्मा की ओर झुकाव करना और पर की एकता तोड़ना, यह भेदज्ञान। देखो न, इसमें लिखा है न? क्योंकि अनादि से शुद्ध चैतन्यस्वभाव और रागादि, कषायादि और योगादि से एकत्वबुद्धि है। वह अनादि से है। उसका भेदविज्ञान पहला है। आहाहा! कुछ करना है, यह नहीं। भले भेदविज्ञान पहले विकल्पवाला होता है, विकल्पवाला भेदज्ञान होता है। वास्तविक भेदज्ञान (तो) फिर विकल्प टूटकर निर्विकल्प (आनन्द का) अनुभव हो, वह भेदज्ञान।

कलश टीका में भेदविज्ञान के दो प्रकार किये हैं। आहाहा! जब तक बुद्धिपूर्वक

भेदज्ञान करना है, बुद्धिपूर्वक जब तक राग और द्वेष और योग को भिन्न करना है, तब तक विकल्प है। उस विकल्परहित होकर शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है, तब उसे संवर और समकित होता है। आहाहा!

अब संवर होने के क्रम में.. संवर-धर्म होने के क्रम में। मोक्ष का मार्ग होने के क्रम में। आहाहा! संवर का पहला ही कारण भेदविज्ञान कहा है,.. आहाहा! धर्म का पहला कारण भेदविज्ञान कहा। धर्म होनेवाले को भेदविज्ञान ही पहला कारण कहा। आहाहा! १७वीं गाथा में ऐसा आया था कि पहले आत्मा को जानना चाहिए। यहाँ यही कहा कि पहले में पहला भेदविज्ञान करना। पर से भिन्न (करना), क्योंकि पर से एकत्वबुद्धि है, वही मिथ्यात्व और अध्यवसाय है। आहाहा! इस योग के कम्पन या दया, दान, व्रत का राग का अंश, उसके साथ एकत्वबुद्धि, वही मिथ्यात्वभाव का अभेद भाव है। पर के साथ अभेद है। आहाहा! इसलिए प्रथम ही संवर करने का पहला कारण भेदविज्ञान कहा है, अब उसकी भावना के उपदेश का काव्य कहते हैं:- यह भेदविज्ञान हुआ, उसकी भावना का उपदेश कहते हैं। आहाहा! पूरे दिन यह धमाल करे, भगवान की भक्ति करे और पूजा करे और पैसा खर्च करे, इससे धर्म हो जाए यह बात है नहीं। (वह) सब आस्रव है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक (कहा कि) मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग पाँच जो बन्ध के कारण हैं, पाँच से एकत्वबुद्धि तोड़ना, पाँच से भेद करना, यह भेदज्ञान प्रथम कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप मुद्दे की रकम कहते हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल वस्तु है। पहले आ गया है कि सम्यक्त्व होने पर, क्षायिक सम्यक्त्व होने पर योग का भी एक अंश नाश होता है। एकत्वबुद्धि नाश हुई तो उतना कम्पन का-योग का नाश हुआ। आहाहा! यहाँ यह लिया है न? मिथ्यात्व, अव्रत, अज्ञान और योग ऊपर लिये न? भावार्थ में चार बोल लिये हैं। इन चार के साथ एकत्वबुद्धि है, तब तक अध्यवसाय मिथ्यात्व है। आहाहा! इन चार से एकत्वबुद्धि तोड़कर, चार से एकत्वबुद्धि-योग से भी एकत्वबुद्धि तोड़कर। आहाहा! गजब बात है।

स्वयं भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त पवित्रता के गुण का पिण्ड है, उसे योग और राग के भाव से भिन्न करना... आहाहा! यह प्रथम संवर का भेदविज्ञान कारण है। यह

पहले में पहले भेदविज्ञान कारण है। आहाहा! पहले क्या करना? भेदविज्ञान के प्रकार में बात ले, तब ऐसा ले कि पहले विकल्प से भेदज्ञान करे, तथापि वह वस्तु नहीं है। (भेद) करे, ऐसे दो सही न, इसलिए विकल्प आवे। इससे भिन्न हूँ, इससे भिन्न हूँ, इससे भिन्न हूँ परन्तु वह सब टूटकर योग की एकता की बुद्धि भी टूट जाए। आहाहा! राग की एकता की बुद्धि तो टूटे परन्तु आत्मप्रदेश का कम्पन, उसमें से भी आंशिक योग की एकता टूट जाए। आहाहा! यह कहते हैं। १२९ (कलश)

सम्पद्यते सम्बर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात् ।

स भेदविज्ञानत एव तस्मात् तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥१२९॥

[एषः साक्षात् संवरः] यह साक्षात् (सर्व प्रकार से) संवर.. धर्म। आहाहा! संवर (अर्थात्) आस्रव का अभाव और कर्म का नहीं आना, ऐसा जो प्रथम साक्षात् संवर। सर्व प्रकार से संवर.. आहाहा! वास्तव में [शुद्ध-आत्म-तत्त्वस्य उपलम्भात्] शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि से.. प्राप्ति (अर्थात्) 'उपलम्भात्' अनुभव। पर का जो अनुभव एकत्वबुद्धि में है, राग-द्वेष, दया, दान और योग के साथ एकत्वबुद्धि का जो अनुभव है, उसे छोड़कर आत्मा के साथ एकत्वबुद्धि का अनुभव। आहाहा! ऐसा कठिन पड़े, इसलिए फिर लोग दूसरे रास्ते चढ़ जाते हैं। व्रत करो, तप करो, उससे धर्म होगा, शुभभाव करो, शुभभाव बहुत करो। शुभभाव तो आस्रव है और आस्रव की एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! यहाँ तो चार की एकताबुद्धि तोड़ने का कहा न! मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व के साथ एकता तोड़ने पर सब छूट जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब छूटती है, साथ ही टूटती है। उसके प्रकार बतलाने हैं न! पर से एकत्वबुद्धि छूटे, उसमें योग और कषाय की बुद्धि साथ में छूट जाती है। इसलिए पहले आ गया है। अर्थात् आंशिक तो अविरति टूट जाती है, इसलिए आंशिक योग-कम्पन टूट जाता है। आहाहा! आस्रव में आ गया है। जितने अंश आत्मा राग से भिन्न करके भेदज्ञान करता है और मिथ्यात्व मिटाता है, उतने अंश वहाँ मिथ्यात्व का तो अभाव होता है, परन्तु अविरति उतने अंश में जिस प्रकार की तीव्र (थी, वह) निकल जाती है। तथा योग का कम्पन जितना है, उतना कम्पन एकताबुद्धि में रहता नहीं। जितना कम्पन

पहले था, वैसा भगवान आत्मा के साथ एकत्वबुद्धि हुई, उतने कम्पन का अभाव होता है। आहाहा! अब यहाँ तो अभी (लोगों को) शुभभाव से धर्म (मनवाना है)। यहाँ तो कहते हैं, योग के कम्पन के अंश का अभाव हुआ, तब चारों से एकत्वबुद्धि टूटती है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है।

मुमुक्षु : क्षायिक समकित हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह समकित ही है। यहाँ इसमें अप्रतिहत की ही बात है। आहाहा!

[शुद्ध-आत्म-तत्त्वस्य उपलम्भात्] जब पर से भेदज्ञान करता है, तब उसे शुद्ध परमात्मा आत्मा है, उसका अनुभव होता है। इसका नाम भेदज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से इसका नाम सम्यग्दर्शन, स्थिरता की अपेक्षा से इसका नाम स्वरूपाचरण। आहाहा! क्योंकि जितना कषाय में एकत्व था, उतनी बुद्धि टूटी, उतना कषाय के अभाव का परिणाम भी हुआ। आहाहा! स्वरूपाचरण का (कितने ही) निषेध करते हैं? स्वरूपाचरण चौथे (गुणस्थान में) नहीं होता, भाई! विद्यानन्द, विद्यानन्द न? विद्यासागर।

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! एक बार सुन। एक ओर परिपूर्ण भगवान अक्रिय—योग कम्पनरहित, कषायरहित, मिथ्यात्वरहित, अव्रतरहित, प्रमादरहित, ऐसा जिसका स्वरूप है, उसका पर से भिन्न पड़कर अनुभव होने पर जितने अंश हैं, उनमें से एक-एक अंश सब साथ में टूट गये। मिथ्यात्व टलने पर सब चारों प्रकार के अंश कम हो गये, अंश टूट गये। उनके साथ एकत्वबुद्धि नहीं रही। आहाहा! ज्ञान और समकित धारा कषायरहित, योग के कम्पनरहित हो गयी। भले थोड़ी हो। आहाहा! ऐसा है। लोगों को मध्यस्थ से आग्रह छोड़कर शास्त्र को जो कहना है, उसे मध्यस्थ से अपनी दृष्टि में ले, (तो पता पड़े) परन्तु यह तो अपनी दृष्टि प्रमाण शास्त्र का अर्थ करते हैं, इसलिए सब उल्टे अर्थ होते हैं।

वही साक्षात् संवर। आहाहा! साक्षात् संवर, प्रत्यक्ष संवर। आहाहा! राग और योग से एकत्वबुद्धि टूटने पर भगवान आत्मा के साथ साक्षात् एकत्वबुद्धि होती है। है न? यह साक्षात् सर्व प्रकार से... वास्तव में शुद्ध आत्मतत्त्व के अनुभव से होता है। यह सब शुद्ध आत्मतत्त्व की ओर के झुकाव से शुद्ध आत्मतत्त्व की ओर के झुकाव से यह अनुभव होता

है। कषाय और अज्ञान और योग का अंश भी वहाँ टूट जाता है। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि सोनगढ़वालों ने समकित को महँगा किया। सस्ता था, (उसे) महँगा किया। यह देव-गुरु में धर्म माना और व्रत करना, यह इसका-अज्ञानी का समकित। आहाहा!

परमात्मा की यह पुकार है, प्रथम में प्रथम संवर का मुख्य प्रथम कारण भेदविज्ञान है। इसका अर्थ कि जो अभेद बुद्धि से है, उससे भिन्न पड़ना, वह प्रथम कारण है। आहाहा! ऐसी बात है! आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्धस्वभाव का अस्ति-तत्त्व, जिसकी सब सत्ता शुद्ध है, उसकी एकताबुद्धि में, अनुभव में पर से भिन्न पड़ जाता है, तब वह संवर का कारण होता है और शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति से... आहाहा! शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव [भेदविज्ञानतः एव] देखा? भेदविज्ञान से ही होती है। आहाहा! राग की क्रिया और दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या से भेदज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। उससे तो भेद करना है, जिससे भेद करना है, उससे भेद होगा? आहाहा! कठिन बात है, भाई! अभी की प्रथा और वीतरागमार्ग (दोनों में) बहुत सब फेरफार है, बहुत फेरफार, बहुत फेरफार। (सब) मिथ्यात्व के पोषक हैं। व्रत करो, तपस्या करो, (तो) तुम्हारा कल्याण होगा। यह मिथ्यात्व का पोषक है, मिथ्यात्व की वृद्धि है। आहाहा! बड़े गजरथ करो, रथयात्रा निकालो, पाँच-पच्चीस लाख खर्च करके बड़ी प्रभावना करो... इन सबमें धर्म मानना, वह मिथ्यात्व की वृद्धि है। आहाहा!

मुमुक्षु : गजरथ निकालने में दोष नहीं, उसमें भला मानना, वह दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भला मानना, वह मिथ्यात्व है। वह स्वयं वस्तु मिथ्यात्व नहीं है। वह मेरा है, ऐसा मानना मिथ्यात्व है। आहाहा! मेरा तो ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। उसमें इस योग और राग को अपना मानना, वही मिथ्यात्व है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

शरीर की क्रिया और शुभराग इसे सरल हो गया है। उसमें से मानो अब धर्म हो जाएगा। यहाँ कहते हैं क्लेश करो तो करो। इस भक्ति का और राग का, पूजा का, यात्रा का राग है, वह क्लेश करो तो करो परन्तु धर्म नहीं है, उसमें धर्म की गन्ध नहीं है। आहाहा! यह निर्जरा अधिकार में आता है। क्लेश करो तो करो। आहाहा! यह शुभराग क्लेश है। आहाहा! कैसे बात जँचे? अभी सुनने को मिलती नहीं। यहाँ तो मूल की बात भेदविज्ञान का अनुभव, यह भेदविज्ञान से ही होता है। आत्मतत्त्व का अनुभव भेदविज्ञान से ही होता

है। आहाहा! ऊपर कहा न? संवर का पहला ही कारण भेदविज्ञान.. है, यह कहा। आहाहा!

शुद्ध आत्मा.. जिसमें तीर्थकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भाव भी धर्म नहीं है। वह भाव भी पुण्य है। वास्तव में तो वह अधर्म है। धर्म से बन्धन नहीं होता और जिस भाव से बन्धन होता है, वह धर्म नहीं है। आहाहा! कहाँ पहुँचना? (संवत्) १९८५ में पहले कहा। बोटद में (संवत्) १९८५ के वर्ष (में) व्याख्यान में हजारों लोग (आते थे)। तीन सौ घर, वे सब आते। कानजी मुनि व्याख्यान देने बैठे हैं। लोगों के झुण्ड आते, झुण्ड, आप नहीं। बाहर बैठते, तब १९८५ के वर्ष में कहा, पौष महीना था। कहा, जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह धर्म नहीं। धर्म से बन्धन नहीं होता और बन्धन हो, वह भाव धर्म नहीं है और बहुत (कड़क) भाषा से कहें तो वह अधर्म है। आहाहा! क्योंकि जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधा, उस भाव का नाश करेगा तो वीतराग होगा। तीर्थकर प्रकृति बँधी, इसलिए वह अब केवलज्ञान प्राप्त करेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! जिस भाव से बँधा, उस भाव को तोड़ेगा, तब वीतराग होगा। पश्चात् तो केवल (ज्ञान) होगा, फिर तो उस प्रकृति का उदय आयेगा। आहाहा! उसमें आत्मा को क्या लाभ हुआ? आहाहा! आवे, होता है, पूर्ण न हो वहाँ यह भाव आवे, परन्तु है बन्ध का कारण।

यहाँ तो शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव होता है और उस शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति... आहाहा! होती है। प्राप्ति [भेदविज्ञानतः एव] भेदविज्ञान से ही होती है। ऐसा कहा। [भेदविज्ञानतः एव] ऐसा है न? 'एव' है न 'एव'? [भेदविज्ञानतः एव] निश्चय पड़ा है। [भेदविज्ञानतः एव] जिसे आत्मा की अनुभव की प्राप्ति होती है, उसे भेदविज्ञान से ही होती है। राग की सहायता से या पुण्य-पाप, दया-दान की सहायता से होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसा होवे तो खलबलाहट होगी या नहीं? तुम्हारे उस कपिल कोटडिया को खलबलाहट (हो गयी)। सबको क्रियाकाण्ड में धर्म मनवाना है, इसलिए खलबलाहट... खलबलाहट हो गयी। यह अनादि का है, यह कुछ नया नहीं है, बापू! आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, उस शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव (प्राप्ति) भेदविज्ञान से ही होती है। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है, दूसरी कोई उसकी विधि नहीं है, दूसरी कोई उसकी रीति नहीं है। आहाहा! आचार्यों ने तो सूर्य की भाँति स्पष्ट बात रख दी है। दुनिया को जँचे या न जँचे। लोगों को जँचे (या) न जँचे। आहाहा! बात तो देखो! [सम्पद्यते]

उस शुद्धात्मा का अनुभव [भेदविज्ञानतः एव] आहाहा! गजब बात है! पहले से शुरुआत, वह ठेठ तक पर से भिन्न स्व के अनुभव से ही धर्म-संवर होता है। आहाहा! जितना पर से भेद करके अभेद में आवे, उतना धर्म। आगे अभी भेद रह जाए, उससे फिर पृथक् पड़े, उतना धर्म। वह जितना रहे, उतना आस्रव। आहाहा!

[भेदविज्ञानतः एव] है न इसमें शब्द? [सः भेदविज्ञानतः एव] मूल श्लोक (की) तीसरी लाईन है। भेदविज्ञान ही। आहाहा! इस 'ही' में तो एकान्त हो जाता है। भगवान का मार्ग अनेकान्त है। अनेकान्त है अर्थात् भेदविज्ञान से होता है और अभेद से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! (लोग कहते हैं) भगवान का मार्ग तो 'ही' एकान्त होता नहीं। यहाँ पूरा एकान्त कहा। भेदविज्ञान से ही मुक्ति होती है, एकान्त है। सम्यक् एकान्त, निश्चयनय है। आहाहा! अब यह सब थोथा करके बैठे—सामायिक की, प्रोषध किये, प्रतिक्रमण किये, (वे सब) व्यर्थ किये हैं। वह तो मिथ्यात्व का पोषक है। आहाहा!

छोटे में छोटी राग की क्रिया या कम्पन की (क्रिया हो), उसकी एकताबुद्धि मिथ्यात्व है। और छोटे में छोटा पहला भेदज्ञान इस कम्पन और राग से भिन्न पड़ा हुआ भेदविज्ञान मुक्ति का कारण है। आहाहा! इसमें है या नहीं? आहाहा! कैसा श्लोक रखा है! 'सम्पद्यते सम्वर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात्। स भेदविज्ञानत एव तस्मात्' वापस ऐसा। आहाहा! साक्षात् संवर की-धर्म की प्राप्ति (होती है), वह शुद्ध आत्मतत्त्व के अनुभव से (होती है) और उस शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव भेदज्ञान से होता है। आहाहा! भेदज्ञान से संवर होता है और आत्मा के स्वभाव की अभेदता से संवर होता है। पर की भिन्नता हुई और अपने स्वभाव की एकता हुई। यही इसका धर्म का और संवर का क्रम है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेदविज्ञान और आत्मध्यान दोनों से संवर होत है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मध्यान (कहो या भेदज्ञान) एक ही है। भेदविज्ञान, वही आत्मा का ध्यान है। राग से भिन्न पड़कर आत्मा की ओर उन्मुख है, वही ध्यान है। आहाहा! कषाय और उससे हटा, हटा तो स्वभाव की ओर आया, वही धर्म है, वही आत्मा है। आहाहा!

[तस्मात्] इसलिए... क्या कहा ? कि धर्म का मूलकारण भेदज्ञान और भेदविज्ञान, इसलिए [तत् भेदविज्ञानम्] इसलिए भेदविज्ञान। अत्यन्त भाने योग्य है। आहाहा! अन्तर में उसे राग से भिन्न और कम्पन से भिन्न है, ऐसा भाने योग्य है। बहुत सरस श्लोक है। संवर के अन्तिम श्लोक! आहाहा! भेदविज्ञान ही मुक्ति का कारण है। इसलिए.. इसलिए वह भेदविज्ञान अत्यन्त भाने योग्य है। अन्तर में एकाग्र होनेयोग्य है। आहाहा! यही भेदविज्ञान का मूल है। बहुत संक्षिप्त भाषा है।

भावार्थ : जब जीव को भेदविज्ञान होता है.. राग और विकल्प से भिन्न पड़ता है। आहाहा! जब जीव आत्मा और कर्म को यथार्थतया भिन्न जानता है.. यथार्थरूप से भिन्नरूप जानता है। अकेला जानना नहीं। अन्दर में यथार्थरूप से भिन्नरूप से जानता है। तब वह शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है,.. तब वह शुद्ध आत्मा के आनन्द को अनुभव करता है। शुद्ध आत्मा के अनुभव से आस्रवभाव रुकता है,.. उससे आस्रव रुकता है। और अनुक्रम से सर्व प्रकार से संवर होता है,.. इस विधि से अनुक्रम से संवर होता है। इस प्रकार से धर्म होता है। आहाहा! इसलिए भेदविज्ञान को अत्यन्त भाने का उपदेश किया है। ठीक! अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं। इसलिए भेदविज्ञान को अत्यन्त भाने का उपदेश किया है। आहाहा!

कलश-१३०

अब, काव्य द्वारा यह बतलाते हैं कि भेदविज्ञान कहाँ तक भाना चाहिए।

(अनुष्टुप्)

भावयेद्भेद-विज्ञान-मिदमच्छिन्न-धारया ।

तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥१३०॥

श्लोकार्थ : [इदम् भेदविज्ञानम्] यह भेदविज्ञान [अच्छिन्न-धारया] अच्छिन्न-धारा से (जिसमें विच्छेद न पड़े, ऐसे अखण्ड प्रवाहरूप से) [तावत्] तब तक

[भावयेत्] भाना चाहिए [यावत्] जब तक (ज्ञान) [परात् च्युत्वा] परभावों से छूटकर [ज्ञानं] ज्ञान [ज्ञाने] ज्ञान में ही (अपने स्वरूप में ही) [प्रतिष्ठते] स्थिर हो जाये।

भावार्थ : यहाँ ज्ञान का ज्ञान में स्थिर होना दो प्रकार से जानना चाहिए। एक तो, मिथ्यात्व का अभाव होकर सम्यक्ज्ञान हो और फिर मिथ्यात्व न आये, तब ज्ञान ज्ञान में स्थिर हुआ कहलाता है; दूसरे, जब ज्ञान शुद्धोपयोगरूप में स्थिर हो जाये और फिर अन्य विकाररूप परिणमित न हो, तब ज्ञान, ज्ञान में स्थिर हुआ कहलाता है। जब तक ज्ञान दोनों प्रकार से ज्ञान में स्थिर न हो जाये, तब तक भेदविज्ञान को भाते रहना चाहिए॥१३०॥

श्लोक - १३० पर प्रवचन

अब इसी गाथा। भेदविज्ञान कहाँ तक भाना चाहिए। अब कहते हैं। पर से भिन्न और स्वभाव की एकता कहाँ तक करना? पूर्ण हो तब तक। आहाहा!

भावयेद्भेद-विज्ञान-मिदमच्छिन्न-धारया।

तावद्यावत्पराच्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते॥१३०॥

ओहोहो! [इदम् भेदविज्ञानम्] यह भेदविज्ञान... इदम् अर्थात् यह। भेदविज्ञान (अर्थात्) राग से भिन्न, विकल्प से भिन्न—ऐसा जो भेदविज्ञान [अच्छिन्न-धारया] अच्छिन्न-धारा से (जिसमें विच्छेद न पड़े, ऐसे अखण्ड प्रवाहरूप से).. आहाहा! घड़ीक में पर से भिन्न और फिर घड़ीक में पर से एकत्व, ऐसा नहीं। आहाहा! पर से भिन्न की अच्छिन्नधारा से भावना करना। आहाहा! आचार्यों के तीव्र शब्द पंचम काल के लिए यह कहते हैं? पंचम काल के साधु हैं, पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। कोई ऐसा कहता है कि पंचम काल में कुछ नहीं है। कहते हैं न? एक श्रुतसागर है। श्रुतसागर साधु। शान्तिसागर के पथानुगामी में है (वे कहते हैं) अभी तो शुभयोग ही होता है, बस! अर..र! ऐस गजब करते हैं। वापस कोई सामने बोलनेवाला नहीं मिलता, कोई पूछनेवाला नहीं मिलता। तुम यह क्या कहते हो? शुभभाव तो अभव्य को भी अनन्त बार होता है। शुभभाव तो अनन्त बार किया है (परन्तु) धर्म नहीं हुआ।

यह भेदविज्ञान अच्छिन्न-धारा से (जिसमें विच्छेद न पड़े, ऐसे अखण्ड प्रवाहरूप से) तब तक.. [तावत्] अर्थात् तब तक.. आहाहा! [भावयेत्] भाना चाहिए, जब तक.. [परात् च्युत्वा] परभावों से छूटकर.. एकदम परभाव से छूटकर अकेला ज्ञान-आत्मा रह जाए, तब तक भेदज्ञान की भावना करना। आहाहा! एक बार किया, इसलिए फिर हो गया, ऐसा नहीं, परन्तु फिर भी ठेठ तक स्वरूप का झुकाव रहा ही करे, स्वरूप सन्मुख की दशा का पुरुषार्थ रहा ही करे, यह [अच्छिन्न-धारया] भेदज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : बारहवें गुणस्थान तक।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से शुरुआत, सातवें से। यह बारहवें-बारहवें कुछ नहीं। यहाँ गुणस्थान लिया ही नहीं। गुणस्थान जीव में है ही नहीं। नहीं आया यह? गुणस्थान जीव में है ही नहीं। यहाँ तो राग से, पर से भिन्न करके अपने में सम्पूर्ण हो, तब तक भाना, इतनी बात है। उसमें बीच में गुणस्थान आवे, परन्तु वह बात ली थी, परन्तु जीव में गुणस्थान है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। गुणस्थान भेदवाला है। उससे भी भेद करके अभेद करना है। आहाहा! फिर कहा जाए उसे, पहले से भेद करके करे तो चौथा आवे, विशेष एकाग्र होवे तो पाँचवाँ आवे, ऐसा कहा जाता है। विशेष स्थिरता हो (तो) छठा - सातवाँ आवे, परन्तु उस पर्यायबुद्धि पर लक्ष्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। चौदह गुणस्थान वह पर्यायबुद्धि है। आहाहा!

अखण्ड ज्ञायकभाव पूर्ण परमात्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का भरचक भरपूर कोठार। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भरचक भरपूर भण्डार, उसके ओर की भावना, पूर्ण स्थिरता न हो, तब तक करना। आहाहा! ऐसा समय मिले कहाँ? आहाहा! लड़के को सम्हालना, घर में पच्चीस-तीस व्यक्ति हो और यह महँगाई। एक-एक व्यक्ति को पचास-पिचहत्तर का खर्च तो हो। बीस मनुष्य हो तो पन्द्रह सौ रुपये चाहिए। आहाहा! कठिन काम है।

यहाँ तो कहते हैं कि शुभ विकल्प जो आता है, उससे भेदज्ञान भाना। जब तक पूर्ण न हो, तब तक (भाना)। आहाहा! है न? परभावों से छूटकर ज्ञान ज्ञान में ही.. ज्ञान अर्थात् आत्मा। आत्मा, आत्मा में ही (अपने स्वरूप में ही) स्थिर हो जाये। वहाँ तक

पर से भिन्न करना। एकदम स्थिर हो जाए। आहाहा! चारित्र की यथाख्यातचारित्रदशा भेदविज्ञान से (होती है), तब तक उसे भाना। भेद-अभ्यास आता है न? कलश में दो-तीन जगह आता है। भेद अभ्यास चारित्र के लिए भी। आहाहा!

भावार्थ : यहाँ ज्ञान का ज्ञान में स्थिर होना दो प्रकार से जानना चाहिए। आत्मा आत्मा में स्थिर हो, यह दो प्रकार से है। एक तो, मिथ्यात्व का अभाव होकर सम्यक्ज्ञान हो और फिर मिथ्यात्व न आये, तब ज्ञान ज्ञान में स्थिर हुआ कहलाता है;.. एकताबुद्धि तोड़कर स्व में एकत्व आया, उसे भी यहाँ भेदविज्ञान कहा जाता है। आहाहा! दूसरे, जब ज्ञान शुद्धोपयोगरूप में स्थिर हो जाये.. उपयोग वर्तमान में जब शुद्धोपयोग हो जाए। पहले शुद्ध उपयोग पूर्ण नहीं हुआ था। किसी समय होता था। दूसरे में (कहते हैं), जब तक पूर्ण (न हो तब तक)। ज्ञान शुद्धोपयोगरूप में स्थिर हो जाये और फिर अन्य विकाररूप परिणमित न हो.. आहाहा! तब ज्ञान में स्थिर हुआ कहलाता है। पहले सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से स्थित हुआ कहलाता है, परन्तु इतना अभी पूर्ण स्थिर नहीं हुआ। पश्चात् ज्ञान, ज्ञान में अत्यन्त स्थिर हो जाए, तब तक भेदज्ञान रखना। आहाहा! ऐसे भाव और ऐसे भाव के अर्थ। अनजाने व्यक्ति को ऐसा (लगे) कि इसमें करना क्या? करने का नहीं आया? भाई! आहाहा! प्रभु! तू बड़ा पड़ा है। तेरे परमात्मा के पास तो सिद्ध की पर्याय भी कुछ कीमत की नहीं है। इतनी तेरी शक्ति है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे राग की एकताबुद्धि से तोड़कर स्थिर होना, वह पहले नम्बर का है और पश्चात्... पहला नम्बर अर्थात् ऊँचा, ऐसा नहीं, पहले से ऐसा। पश्चात् अन्दर से स्थिर होना, अस्थिरता में से छूटकर स्थिर होना, वह उत्कृष्ट प्रकार का भेदज्ञान। ठेठ वीतरागता हो, वहाँ तक भेदज्ञान करना, कहते हैं। आहाहा!

शुद्धरूप हो जाए और फिर अन्य विकाररूप परिणमित न हो, तब ज्ञान में स्थिर हुआ कहलाता है। जब तक ज्ञान दोनों प्रकार से ज्ञान में स्थिर न हो जाये.. दोनों प्रकार से, एक तो मिथ्यात्व टलकर समकित में आवे और पश्चात् अस्थिरता टलकर शुद्ध उपयोग में आ जाए। इन दोनों प्रकार से भेदज्ञान करना। आहाहा! ये जब तक ज्ञान दोनों प्रकार से ज्ञान में स्थिर न हो जाये तबतक भेदविज्ञान को भाते रहना चाहिए। आहाहा! वास्तव में तो राग से या विकल्प से भिन्न पड़ा, वह भिन्न पड़ा वह तो पश्चात्

उसका कुछ भेदज्ञान करना पड़ता नहीं, परन्तु पुरुषार्थ झुकाव उस ओर रहा ही करे और यहाँ राग की उत्पत्ति न हो और उग्र पुरुषार्थ करे, इसका नाम उग्र (रूप से) स्थिर हो जाना, ऐसा कहा जाता है। पहले समकित होकर मिथ्यात्व गया, इतना स्थिर हुआ था, पश्चात् चारित्र होकर स्वरूप में स्थिर हुआ। उसे फिर कुछ (भाने का) नहीं होता। वहाँ तक आत्मा को भाना। ऐसा। आहाहा! फिर से भेदविज्ञान की महिमा का कलश कहेंगे, लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)
